Postal Regn. - RTK/010/2020-22
RNI - HRHIN/2003/10425

ओ३म्

आर्य प्रतिनिधि

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा का पाक्षिक मुखपत्र

नवम्बर 2022 (द्वितीय)

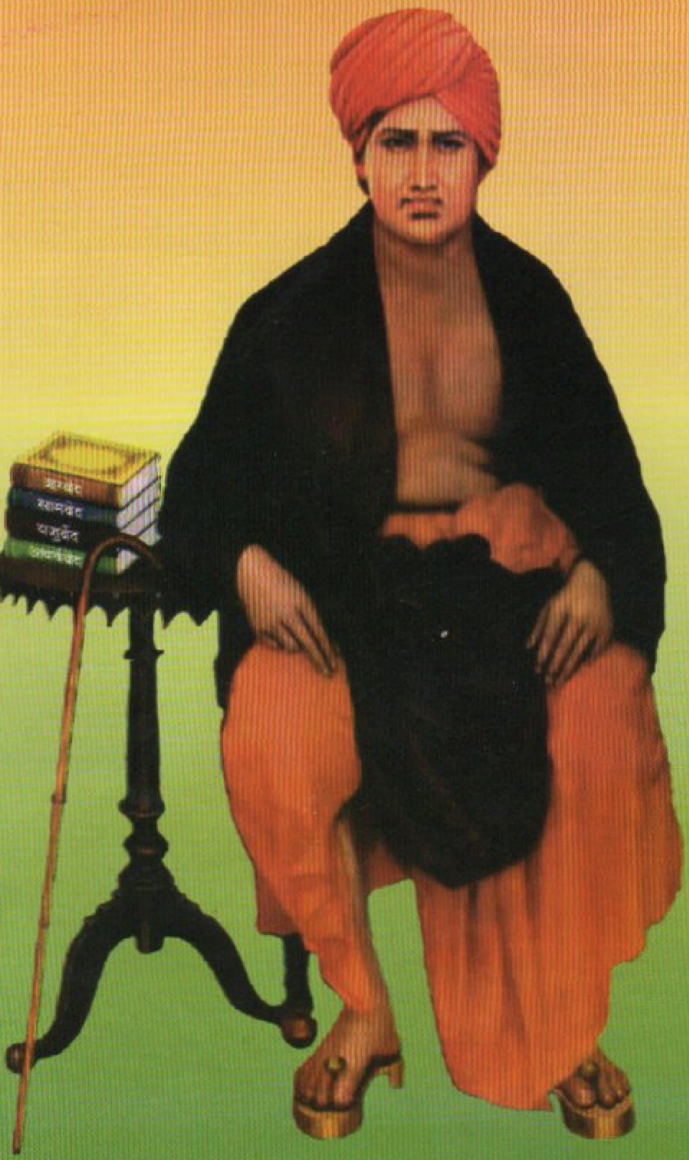

Email : aryapsharyana@yahoo.in

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

Visit us : www.apsharyana.org

सृष्टि संवत् 1,96,08,53,123
विक्रम संवत् 2079
दयानन्दाब्द 199

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा
की
मुख-पत्रिका

वर्ष 18 अंक 20

सम्पादक :
उमेद सिंह शर्मा

पत्रिका-शुल्क
देश में
वार्षिक-200 रुपये आजीवन-2000 रुपये
विदेश में
वार्षिक शुल्क 100 डॉलर
आजीवन 400 डॉलर

पत्रिका का स्वामित्व
आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा (रजि०)
सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ,
गोहाना रोड, रोहतक-124001

सह-सम्पादक
आचार्य सोमदेव

सम्पादकीय विभाग
सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ, रोहतक
सम्पर्क सूत्र-
चलभाष :-
मो० 89013 87993

॥ ओ३म्॥

आध्यात्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय चिन्तन एवं वैदिक जीवन मूल्यों की पाक्षिक पत्रिका

आर्य प्रतिनिधि

नवम्बर, 2022 (द्वितीय)
16 से 30 नवम्बर, 2022 तक

इस अंक में....

1. सम्पादकीय—वेद-प्रवचन 2
2. विदुर-नीति प्रश्नोत्तरी 5
3. महर्षि दयानन्द की बातें स्पष्ट हैं 7
4. आर्यों का संघर्ष व बलिदान (3) 10
5. सभी दुःखों से मुक्ति व आनन्दमय मोक्ष की प्राप्ति के चार साधन 13
6. ब्रह्मचर्य का वह सन्देश 15
7. समाचार-प्रभाग व शेषभाग 16

आर्य प्रतिनिधि पाक्षिक पत्रिका के प्रसार में सहयोग दें

'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक उलट-पलटकर रख देने लायक नहीं, बल्कि गंभीरतापूर्वक पढ़ने योग्य पत्रिका है। यदि आप इसके पाठक बनेंगे तो हमें विश्वास है कि पसन्द भी करेंगे और चाहेंगे कि इसे अन्य लोग भी पढ़ें। कृपया अपने जैसे गम्भीर पाठकों से 'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक पत्रिका की चर्चा करें, उन्हें इसका ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करके ऋषि ऋण से अनृण होवें।

'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक का वार्षिक शुल्क 200/- रुपये एवं आजीवन शुल्क 2000/- रुपये है।

आप उपरोक्त राशि 'आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा' दयानन्दमठ रोहतक के नाम से बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा भिजवाकर सदस्य बन सकते हैं।

—सम्पादक

सम्पादकीय...

वेद-प्रवचन

❑ संकलन—उमेद शर्मा, पूर्व मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा, दयानन्दमठ, रोहतक

वेदमन्त्र

सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः।
अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः॥

(अथर्ववेद 10.8.23)

अन्वय-एनम् सनातनम् आहुः। उत अद्य स्यात् पुनः नवः। अहोरात्रे प्रजायेते अन्यः अन्यस्य रूपयोः॥

अर्थ-(एनम्) उसको (सनातनम्) सदा रहने वाला, कभी नष्ट न होने वाला (आहुः) कहा करते हैं (उत) जो (अद्य) आज भी (पुनः नवः) फिर नया जैसा (स्यात्) होता हो। (अहोरात्रे) दिन-रात दोनों (प्रजायेते) उत्पन्न हुआ करते हैं (अन्यः अन्यस्य रूपयोः) एक-दूसरे के रूप में।

व्याख्या-संसार की हर वस्तु परिवर्तनशील है, कोई वस्तु एक अवस्था में नहीं रहती, इसलिए इसको क्षणभंगुर कहते हैं। ऐसी अवस्था में किसी स्थित पदार्थ के अस्तित्व पर विश्वास करना कठिन हो जाता है। जिस चीज को पकड़ना चाहते हैं वह झट हाथ से छूट जाती है और उसके स्थान में दूसरी आ जाती है और जब हम उस दूसरी चीज को पकड़ने का प्रयास करते हैं वह झट से छूट कर भाग जाती है, तीसरी आ उपस्थित होती है। यह क्रम निरन्तर जारी रहता है। इसलिए संसार को असार कहा है। परन्तु संसार को सर्वथा लोग असार मानने से मानव कभी सन्तुष्ट नहीं रहा। क्षणिकवाद वाले लोग भी व्यवहार में क्षणिकवादी नहीं होते। उनको भी प्रतीत होता है कि उनके तर्क में कहीं त्रुटि अवश्य है। माण्डले (बर्मा) में मैंने एक कहानी सुनी। वास्तविक है या कल्पित ज्ञात नहीं, परन्तु इस कथन पर प्रकाश अवश्य डालती है। किसी बौद्ध ने चोरी की। राजकर्मचारियों की ओर से उस पर अभियोग चलाया गया। कचहरी में उसने कहा, "मैं चोरी का अपराधी नहीं। जिस दिन चोरी की घटना हुई बताई जाती है उस दिन मैं था ही नहीं।" लोग आश्चर्य में रह गये। उससे पूछा गया कि "तुम उस दिन अपना न होना कैसे सिद्ध करते हो?" उसने उत्तर दिया, "मैं बौद्ध हूँ। आप भी बौद्ध हैं। हम दोनों का सिद्धान्त यह है कि संसार क्षणिक है। जो वस्तु इस क्षण में है वह अगले क्षण में न रहेगी। कोई स्थायी चीज तो है नहीं। फिर आप ही बताइए कि जो चोरी इतने दिन पूर्व की बताई जाती है उसका कर्त्ता मैं कैसे हो सकता हूँ? उस घटना से आज करोड़ों क्षण बीत गये। जब कुछ भी शेष नहीं रहा तो चोर कैसे बच सकता है? 'मैं' तो कोई स्थायी पदार्थ नहीं।" अब आप यह समझ लीजिए कि कोई क्षणिकवादी यह नहीं कह सकता कि मेरी आयु इतने वर्ष की है। अथवा दस वर्ष हुए मैंने यह पुस्तक लिखी थी या अमुक नगर देखा था। यदि कहो कि यह सब मिथ्या व्यवहार है, सत्य नहीं, केवल व्यवहार के रूप में हम ऐसा मानते हैं, तो इस प्रकार तो आप 'सत्य' को भी सिद्ध न कर सकेंगे। कोई चीज सत्य न रहेगी, न फिर सत्य का विरोधी 'असत्य' ही कुछ रहेगा **क्योंकि असत्य सत्य की अपेक्षा से है। सत्य असत्य की अपेक्षा से नहीं।** आँख की अपेक्षा से 'अन्धा' कहलाता है। अन्धे की अपेक्षा से समाखा नहीं कहते। वस्तुतः अपने को तर्क के लिए क्षणिकवादी करने वाले लोग तो बहुत होंगे परन्तु एक भी ऐसा क्षणिकवादी न मिलेगा जिसे क्षणिकता के सिद्धान्त पर विश्वास हो। संसार को असार मानने वालों का एक श्लोक है—

असारसंसारसमुद्रमध्ये निमज्जितो मे शरणं किमस्ति।
गुरो! कृपालो! कृपया वदैतत् विश्वस्य पादाम्बुजदीर्घनौका॥

एक शिष्य गुरु से पूछ रहा है कि इस असार संसार में डूबते हुए मुझको किसकी शरण लेनी चाहिए? हे कृपालु गुरुजी! मुझे बताइए। गुरुजी उत्तर देते हैं कि ईश्वर के चरणकमलरूपी नौका की शरण लो। परन्तु यदि संसार असार और क्षणिक हैं, उसमें कोई नित्यता या वास्तविकता नहीं तो उसके समुद्र में भी कोई वास्तविकता न होगी। न गहरा जल होगा, न मगरमच्छ होंगे, न तरंगें होंगी, न आँधी,

न तूफान। चित्रपट पर खिंचेहुए मगरमच्छों या तूफान से तो मूर्ख ही डरकर भागेगा। उससे बचने के लिए तो किसी की शरण ढूंढ़ने की आवश्यकता नहीं।

इस वेदमन्त्र में इसी क्षणिकवाद का खण्डन किया है। क्षण और क्षणिकवाद में भेद है। क्षण तो होता ही काल का एक छोटा भाग है। एक क्षण के बाद दूसरा क्षण आता रहता है। परन्तु प्रत्येक वस्तु तो क्षण नहीं है। यदि काल (time) ही केवल एक पदार्थ (Category) होता और अन्य पदार्थ केवल काल का ही रूप या अंश होते तो हम कह सकते थे कि क्षणिकवाद का सिद्धान्त ठीक है अर्थात् कोई चीज स्थायी नहीं। परन्तु कणाद मुनि ने वैशेषिकसूत्रों में नौ द्रव्यों का उल्लेख किया है—

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि। (वैशेषिक 1.1.5)

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिग् या देश, आत्मा और मन नौ द्रव्य हैं। इनमें 'काल' केवल एक द्रव्य है। जो हर चीज को क्षणिक मानता है वहअन्य आठ पदार्थों का निषेध करता है और स्वयं अपने को भी भूल जाता है जो क्षण के विषय में विचार कर रहा है। क्षण ज्ञेय है, ज्ञाता कोई इतर है जो क्षण का ज्ञान रखता है, जो कहता है कि एक क्षण चला गया, दूसरा आ गया। दो क्षणों के परस्पर सम्बन्ध को जानने के लिए क्षणों के अतिरिक्त कोई पदार्थ चाहिए जो काल के ऊपर हो, अर्थात् काल उसको अपने अन्तर्गत न कर सकता हो। ऐसी वस्तु को वेदमन्त्र में 'सनातन' कहा है। काल के अन्तर्गत वस्तु का नाम है अनित्य या परिवर्तनशील और कालातीत का नाम है 'नित्य' या सनातन। वैशेषिक का दूसरा सूत्र देखिए—

नित्येष्वभावादनित्येषु भावात् कारणे कालाख्येति।
(वैशेषिक 1.1.5)

अर्थात् जो नित्य पदार्थों में न हो, अनित्यों में हो, ऐसे कारण को कालकारण कहा है। कार्य अर्थात् अनित्य घटनाओं के जहाँ उपादान या निमित्त कारण होते हैं वहीं साधारण कारणों में एक कारण काल है, क्योंकि काल का प्रभाव केवल कार्य पर ही पड़ता है। जो कार्य नहीं उस पर काल का प्रभाव भी नहीं।

सनातन उसको कहते हैं जो हर समय नया प्रतीत हो अर्थात् उसकी नवीनता कभी क्षीण न हो। 'नया' और 'पुराना' ('सना' तथा 'नव') ये सापेक्षिक शब्द हैं। जो पुराना है वही यदि दूसरे क्षण में वैसा ही प्रतीत हो तो उसे 'नव' या नया कहेंगे। जो पहले था ही नहीं और बिना पूर्व-विद्यमान पदार्थ के अकस्मात् हो जाए वह (पुनर्णवः) फिर नया न कहलाकर 'अन्य' या 'इतर' ही कहलायेगा। इस सूक्ष्म भावना को स्पष्ट करने के लिए वेदमन्त्र में एक मोटा दृष्टान्त दिया है दिन-रात का। हम नित्यप्रति देखते हैं कि दिन निकल आया या रात हो गई। ये दिन-रात एक अर्थ में नये हैं। कल रविवार था। आज सोमवार है, कल मंगलवार होगा।

यदि ऐसा व्यवहार न किया जाए तो काल की गणना कैसे हो और जगत् की प्रगतियों के एक साधारण कारण अर्थात् 'काल' का तिरोभाव ही हो जाए। काल मनुष्य-कल्पित वस्तु नहीं है, नौ द्रव्यों में से एक है, जगत् के कई कोटि के कई कारणों में से एक है। काल 'देव' है। 'तैंतीस देवों में से बारह देव'[1] (आदित्य) काल के ही विभाग हैं, अतः रविवार आदि नाम रखना उपयुक्त और आवश्यक ही है परन्तु सोमवार वही हो जो रविवार था। एक दिन दूसरे दिन जैसा ही बना करता है। उसके स्वरूप में कोई भेद नहीं होता। इसलिए वेद ने कहा, **'अन्यो अन्यस्य रूपयोः'**। **'रूपयोः'** सप्तमी द्विवचन है अर्थात् सोमवार और रविवार के जो दो रूप बताये जाते हैं वे दो नहीं एक ही हैं। एक का रूप दूसरे का भी रूप है।

---

1. शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में तैंतीस देव गिनाये जाते हैं—(द्रष्टव्य शतपथ० 11.6.3.5 तथा सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास सात) आठ वसु—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्र अर्थात् बसने के स्थान। यह जगत् की देश-सम्बन्धी कोटि (Space-Category) है। ग्यारह रुद्र—प्राण, अपान आदि यह जीवात्मा-सम्बन्धी कोटि (Ego-Category) है। बारह आदित्य अर्थात् साल के बारह महीने काल-कोटि (time Category) है। 'इन्द्र' अर्थात् बिजली-शक्ति-कोटि (Energy Category) है प्रजापति या यज्ञ कर्म-कोटि (Action-Category) है। इस प्रकार 'देव' का अर्थ है पदार्थों की कोटियाँ (Category)।

इसको दार्शनिक भाषा में कहेंगे कि 'सोमवार' **स्वरूप** से सादि और **प्रवाह** से अनादि है, अर्थात् जिसको हम सोमवार का नाम देते हैं उसका आदि भी है और अन्त भी। पञ्चाङ्गों में उसके आरम्भ और अन्त का दिनमान दिया रहता है परन्तु सोमवार वैसा ही रहता है जैसा रविवार था अर्थात् प्रवाह तो वैसा ही बना है, सनातन है, नया नहीं। उसको अगर आप चाहें तो 'नित्य-नया' कह सकते हैं। इसका दूसरा दृष्टान्त गंगा नदी का प्रवाह है। गंगा बह रही है। गंगा किसका नाम है ? जल-धारा का! धारा किसका नाम है ? जल-कण-संघात का। जल के कण तो अलग-अलग हैं। जो बिन्दु इस क्षण में बह गया वह फिर नहीं आएगा, परन्तु धारा तो निरन्तर बह रही है। इसलिए कहेंगे कि जल के कण 'स्वरूप' से 'सादि' और 'सान्त' (आदि वाले और अन्त वाले) हैं परन्तु 'प्रवाह' से अनादि और अनन्त हैं। उनका प्रवाह कहीं समाप्त नहीं होता। जगत् के प्रवाह को समझने के लिए ये दृष्टान्त बड़े उपयोगी हैं।

प्रश्न होता है कि सृष्टि सादि है या अनादि फिर प्रश्न होता है कि पहले मुर्गी थी या अण्डा ? फिर प्रश्न होता है कि ईश्वर ने सृष्टि रची, इससे पहले क्या था ? यदि कुछ नहीं था तो सृष्टि कैसे रची, क्यों रची ? सृष्टि को रचे इतने हजार या इतने करोड़ वर्ष हो गये, परन्तु सृष्टि का रचयिता 'खुदा' तो केवल इतना ही बना नहीं है। वह तो पहले भी था। कुरान, बाइबिल आदि धर्मग्रन्थों में इनका उत्तर नहीं मिलता। इस वेदमन्त्र में 'सनातन' और 'नव' शब्दों का दृष्टान्त सहित अर्थ देकर प्रश्न को सुलझा दिया अर्थात् चीज स्वरूप से सादि और सान्त होती हुई भी प्रवाह से अनादि है। ऋग्वेद में इसी आशय को इस प्रकार वर्णित किया है—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।

(ऋग्वेद 10.190.3, तैत्तिरीय आरण्यक 10.1.14)

अर्थात् विधाता परमात्मा ने सूर्य-चन्द्र आदि लोकों को 'यथापूर्व' (पहले जैसा) बनाया। यह नित्य और अनित्य, अनादि और सादि, प्रवाह और स्वरूप का भेद हम नित्यप्रति के जीवन में स्पष्ट देखते हैं। हर मुर्गी पैदा होती है और मरती है, परन्तु मुर्गी जाति तो नित्य है। मनुष्य मरता है और जन्म लेता है, परन्तु मनुष्य जाति तो कभी मरती-जीती नहीं। वह नित्य है सनातन है।

भारतवर्ष में हिन्दुओं में 'सनातन धर्म' शब्द बहुत प्रचलित है। विशेषकर आर्यसमाज के जन्म के पश्चात् तो आर्यसमाज से भेद करने के लिए एक 'सनातनी' सम्प्रदाय ही बन गया है, परन्तु यह 'सनातन' शब्द के ठीक अर्थ न समझने के कारण है। स्वामी दयानन्द ने वैदिक धर्म को सत्य-सनातन वैदिक धर्म कहा है, क्योंकि वह कभी पुराना नहीं होता, न कभी मरता है न उत्पन्न होता है। जो प्रथाएँ या रस्मो-रिवाज मनुष्यों को परिस्थितियों, कल्पनाओं या भावनाओं की अपेक्षा से नित्य बदलते रहते हैं वे सनातन धर्म नहीं। असली सनातन धर्म वही है जो 'यथापूर्व' हो। जो सत्ययुग में और त्रेता में और, द्वापर में और, और कलियुग में और हो वह नवीन सम्प्रदाय तो हो सकता है, सनातन धर्म नहीं। इसीलिए स्वामी दयानन्द ने कहा है कि ऐसे धर्म को मानो जो सदा से चला आया है और सदा रहेगा। दादूपन्थ, नानकपन्थ, कबीरपन्थ धर्म नहीं, सम्प्रदाय हैं और किसी विशेष परिस्थिति की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निर्मित थे। इस्लाम, ईसाई आदि धर्म भी वैसे ही सम्प्रदाय हैं। राम, कृष्ण आदि महापुरुषों के नाम पर गढ़े हुए और साधुओं या मठधारियों द्वारा चलाये हुये धर्म भी सनातन नहीं। सच्चिदानन्द, नित्य, निर्विकार ईश्वर की पूजा ही सनातन है। इसी प्रकार धार्मिक सिद्धान्तों की सनातनता को परखना आवश्यक है। केवल किसी वस्तु को 'सनातन' कह देने से सनातन नहीं हो जाती।

धर्म और धार्मिक प्रथाओं में भेद है। धर्म सनातन है। प्रथाएँ क्षणिक हैं। जिस प्रकार शरीर में कड़ी हड्डियाँ और कोमल मांस होता है—मांस हड्डियों के सहारे रहता है, बिना हड्डियों के खड़ा नहीं हो सकता—इसी प्रकार धार्मिक प्रथाएँ सनातन धर्म के सहारे टिकती हैं। जैसे कमजोर हड्डियों वाला शरीर बेकार होता है, इसी प्रकार जब धर्म के सनातन अंगों में दृढ़ता नहीं रहती तो धार्मिक प्रथाएँ बेकार हो जाती हैं। जिसको लोग आजकल सनातनधर्म कहते हैं उसमें सनातनत्व का अंश लुप्त हो गया, टूटी हुई हड्डियों का पंजरमात्र है, जो धार्मिक प्रथाओं को ठीक रखने में असमर्थ है।

(लेखक—श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय)

विदुर-नीति प्रश्नोत्तरी

❑ संकलन—कन्हैयालाल आर्य, पूर्व प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा, रोहतक

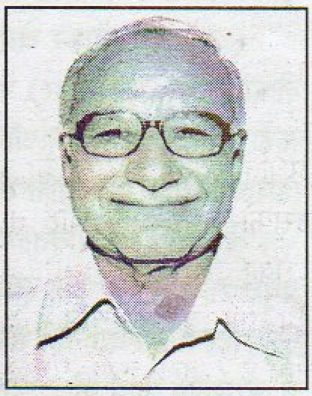

गतांक से आगे....

(1) सबसे पूर्व उसके सम्मान में खड़ा हो जाये, तत्पश्चात् उसके चरणस्पर्श करे।

(2) उस सज्जन पुरुष को आसन देकर बैठावे।

(3) उस सज्जन पुरुष के चरणों को जल से धोये।

(4) उस आगन्तुक का कुशलक्षेम (परिचय) पूछे।

(5) फिर यथा सामर्थ्य उसे भोजन कराये।

प्रश्न 3. अतिथि (ब्राह्मण) जिस घर में (व्यक्ति से) सत्कार नहीं पाता उस व्यक्ति का जीवन कैसा है ?

उत्तर-वेदज्ञ ब्राह्मण (विद्वान् अतिथि) जिस व्यक्ति के घर में दाता के लोभ के कारण, भय के कारण अथवा कंजूसी के कारण सत्कार नहीं पाता है आर्यजन (श्रेष्ठजन) उस गृहस्थ व्यक्ति का जीवन व्यर्थ मानते हैं, ऐसा श्रेष्ठजन कहते हैं।

यहाँ सत्कार से तात्पर्य सबसे पूर्व जल प्रदान करना, फिर मधुपर्क देना, चलते समय गौ आदि उपहार के रूप में देना कहलाता है।

प्राचीनकाल में यह मर्यादा थी कि गृह पर आये ब्राह्मण=ब्रह्मवेत्ता पुरुष=विद्वान् का जल, मधुपर्क और गोदान से सत्कार किया जाता था। मधुपर्क=दही में मधु=शहद (जितने से मीठा हो जाये) मिलाने से मधुपर्क बनता है। अभ्यागत (अतिथि) व्यक्ति को प्राचीन काल में हाथ-मुंह-पैर धुलाकर मधुपर्क भेंट में दिया जाता था और जाते समय उसको गौ आदि अभीष्ट वस्तु भेंट में दी जाती थी।

प्रश्न 4. कौन व्यक्ति सत्कार के योग्य नहीं है ?

उत्तर-निम्नलिखित व्यक्ति सत्कार के योग्य नहीं हैं—

(1) धन लेकर चिकित्सा करने वाला वैद्य।

(2) बाण बनाने वाला अथवा पीड़ा पहुँचाने वाला वा चीड़-फाड़ करने वाला चिकित्सक (सर्जन)।

(3) जो अपना ब्रह्मचर्य नष्ट कर रहा है।

(4) जो व्यक्ति चौर्य कर्म (चोरी का काम) करता है।

(5) जो व्यक्ति क्रूर है, दयाहीन है, आततायी है।

(6) जो व्यक्ति मद्यपान करता है अर्थात् शराब पीता है।

(7) जो व्यक्ति (स्त्री या पुरुष) गर्भ को गिराता है, चाहे वह पति-पत्नी हैं या वैद्य है।

(8) जो व्यक्ति जीविका कमाने के लिए सेना में नौकरी करता है।

(9) जो व्यक्ति धन लेकर वेद पढ़ाता है, ये सब उपर्युक्त व्यक्ति पैर धोने योग्य भी नहीं हैं, अगले सत्कार जल, मधुपर्क, गोदान की बात तो छोड़ ही दीजिए चाहे वह अतिथि बनकर ही क्यों न आये फिर भी विशेष प्रिय अर्थात् आदर के योग्य नहीं होते हैं।

आचार्य युधिष्ठिर मीमांसक जी ने चिकित्सक, सेनाजीवी और जो व्यक्ति धन लेकर वेद पढ़ाता है उन पर विशेष टिप्पणी की है।

(1) चिकित्सक का निषेध उन चिकित्सकों के लिए है जो फीस और पैसा लेकर भी ठीक चिकित्सा नहीं करते हैं। ऐसा वैद्य प्रायः रोगी के अल्प रोग को अधिक बताकर अधिक पैसा बटोरने वाला होता है। धर्मार्थ चिकित्सा करने वाला वैद्य श्रेष्ठ माना जाता है, जीविका के लिए चिकित्सा करने वाला मध्यम और चिकित्सा के बहाने जनता को लूटने वाला अधम माना गया है।

(2) सेनाजीवी-पुराने काल में सेनाजीवी तीन प्रकार के होते थे। (क) अपने राष्ट में राष्ट्र की रक्षा के लिए जीवन निर्वाह लेकर जीवन उत्सर्ग (बलिदान) करने वाले, (ख) परराष्ट्र में परराष्ट्र की रक्षा करने के लिए जीवन निर्वाह लेकर जीवन उत्सर्ग (बलिदान) करने वाले, (ग) भाड़े पर लड़ने वाले (जिन्हें पाणिनीय अष्टाध्यायी में आयुध-जीवी या संघजीवी कहा गया है) इनमें प्रथम कोटि वाले तो सत्कार के योग्य होते हैं, परन्तु दूसरी कोटि वालों को शत्रु

राष्ट के वेतन भोगी होकर कभी-कभी अपने राष्ट्र के विपरीत भी सम्बन्ध कर सकते हैं। अत: यहाँ द्वितीय तथा तृतीय कोटि के सेनाजीवियों की निन्दा की है।

(3) धन लेकर वेद पढ़ाने वाला-ज्ञान की कीमत लेकर (द्रव्य=धन लेकर) पढ़ाने वाले ज्ञान-विक्रयक निन्दित कहे गये हैं। महर्षि मनु जी ने भी इसे निन्दित कर्म माना है। केवल निर्वाह मात्र वृत्ति लेकर अपने गुजारे मात्र के लिए धन लेने वाले स्वभावत: जो दिन रात अध्ययनाध्यापन में प्रवृत्त रहते हैं, वे पूजा (सत्कार) के योग्य हैं। उन्हें वृत्ति लेने मात्र से निन्दित नहीं समझना चाहिये। क्योंकि धर्मशास्त्रों में अध्यापन कार्य को ब्राह्मण की वृत्ति कहा है। ऐसा महर्षि मनु ने मनुस्मृति के प्रथम अध्याय में श्लोक 88 से प्रकट किया है—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यार्थप्रकाश में इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की है—

(ब्राह्मणानाम) ब्राह्मणों के (अध्ययनम्, अध्यापनम्) पढ़ना-पढ़ाना (तथा) (यजनं, याजनं) यज्ञ करना-कराना (दानं च प्रतिग्रहश्चैव) दान देना और लेना ये कर्म (अकल्पयत्) बताये हैं। (1) निष्कपट होके प्रीति से पुरुष पुरुषों और स्त्री स्त्रियों को पढ़ावे। (2) पूर्ण विद्या पढ़े। (3) अग्निहोत्रादि यज्ञ करे। (4) यज्ञ करावे। (5) सुपात्रों को विद्या अथवा सुवर्ण आदि का दान देवे। (6) न्याय से धनोपार्जन करने वाले गृहस्थों से दान लेवे भी।

इनमें से तीन कर्म पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना धर्म में और तीन कर्म पढ़ाना, यज्ञ कराना, दान लेना जीविका है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कार विधि में लिखा है कि जो दान लेना है, वह नीच कर्म है किन्तु पढ़ाके और यज्ञ कराके जीविका करनी उत्तम है।

प्रश्न 5. विदुर नीति के अनुसार कौन-कौन-सी वस्तुएं नहीं बेचनी चाहिएं?

उत्तर-विदुर नीति के अनुसार निम्नलिखित वस्तुएँ नहीं बेचनी चाहिए—

(1) नमक, (2) पका हुआ अन्न (रोटी पूरी आदि), (3) दही, (4) दूध, (5) शहद, (6) तैल, (7) घी, (8) तिल, (9) मांस, (10) फल और कन्द मूल (गाजर आदि), (11) शाक=पत्तेरूप शाक बथुआ, (12) रंगा हुआ कपड़ा, (13) सब प्रकार की गन्ध वाली (सुगन्धित, इत्र आदि) वस्तुएँ, (14) गुड़-ये सब वस्तुएँ बेचने योग्य नहीं हैं।

प्राचीनकाल में इन वस्तुओं की प्रचुरता के कारण इनका बेचना महापाप माना जाता था। मांस बेचना महापाप है, क्योंकि इसके मूल में हिंसा है।

देश, काल, परिस्थिति भेद से बेचने के अयोग्य पदार्थों की गणना शास्त्रों में न्यूनाधिक उपलब्ध होती है। इस समय सभी पदार्थ विक्रय योग्य हैं। आजकल तो मुख्यत: व्यापार ही इन वस्तुओं का होता है, परन्तु ये शुद्ध रूप में ही बेची जायें तभी जनता को लाभ है, परन्तु आजकल तो कुछ भी पदार्थ शुद्ध रूप में नहीं बेचा जाता। यह स्थिति हमारी व्यावहारिक एवं आत्मिक गिरावट की सूचक है। यहां रंगा हुआ कपड़ा (रक्त वस्त्रम्) में रक्त को विशेषण न माना जाये तो अर्थ होगा—लहू=खून का बेचना भी अपराध है, वर्जित है, यदि धन कमाने के लिए किया जा रहा है तो। किसी की जान बचाने के लिए रक्त दान करना धर्म है।

प्रश्न 6. कैसा संन्यासी (भिक्षुक) पुण्यात्मा है?

उत्तर-निम्नलिखित गुणों वाला व्यक्ति संन्यासी (भिक्षुक) पुण्यात्मा है—

(1) जो क्रोध नहीं करता।

(2) जो मिट्टी के ढेले, पत्थर और सुवर्ण को एक समान समझने वाला हो। भाव यह है कि जो व्यक्ति आसक्ति से रहित हो जाता है, तो सोना भी उस व्यक्ति के लिए एक पत्थर या मिट्टी के ढेले के समान है।

(3) जो शोक से रहित है दु:ख (हानि, पराजय) में शोक नहीं करता।

(4) जो स्नेह और वैर से रहित अर्थात् उसे किसी से भी मोह नहीं है।

(5) जो निन्दा और प्रशंसा से ऊपर उठा हुआ है अर्थात् निन्दा और प्रशंसा में समान भाव रखता है।

(6) जो प्रिय और अप्रिय में भेद नहीं करता—ऐसा व्यक्ति उदासीन के समान होता है, वह संन्यासी (भिक्षुक) महान् पुण्यकृत् (महानात्मा, पुण्यात्मा) है। **क्रमश:....**

महर्षि दयानन्द की बातें स्पष्ट हैं

❑ भद्रसेन वेद-दर्शनाचार्य

महर्षि के विचार प्रकाश की तरह स्पष्ट, सुनिश्चित और सन्देह-भ्रम-भयरहित हैं। जैसे कि प्रकाश में वस्तु और स्थल के स्पष्ट होने से कार्य करना सरल होता है और अन्धकार में कार्य करना कठिन तथा वहाँ ठोकर, भय, भ्रम, संशय बना रहता है। इसी दृष्टि से ही अन्याय, अत्याचार के लिए अन्धेर शब्द का प्रयोग होता है। प्रकाश के समान ही महर्षि का तत्त्वबोध जीवन के हर व्यवहार का स्पष्ट, सुनिश्चित, भय, भ्रम-सन्देह रहित रूप दर्शाता है। तब उसको अपनाने से कार्य की सिद्धि सरल हो जाती है। इसके साथ सिद्धि न होने पर होने वाली असफलता, ठोकर और धोखे का डर नहीं होता है।

ऋषिबोध कितना सुसंगत और प्रकाश सदृश है, इसकी पहचान के लिए पहला स्पष्ट-सा नमूना है—विवाह विषयक ऋषि का वर्णन। इसके सम्बन्ध में सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में महर्षि ने विश्वासपूर्वक विवेचन किया है। इसके लिए जहाँ वेदादि शास्त्रों के प्रमाण दिए हैं, वहाँ युक्ति तथा तर्क से भी विचार किया है। उदाहरण के लिए यह एक उद्धरण आयु की दृष्टि से पर्याप्त होगा।

आठ, नौ और दशवें वर्ष पर्यन्त विवाह करना निष्फल है। क्योंकि सोलहवें वर्ष के पश्चात् चौबीसवें वर्ष पर्यन्त विवाह करने से पुरुष का वीर्य परिपक्व, शरीर बलिष्ठ, स्त्री का गर्भाशय पूरा और शरीर भी बलयुक्त होने से सन्तान उत्तम होती है। (4,76)

महर्षि के विचारों की सुसंगति को पहचानने का दूसरा उदाहरण पारस्परिक अभिवादन का लिया जा सकता है। जब एक व्यक्ति दूसरे से मिलता है तो आपस में मिलने पर स्वाभाविक रूप से आदर की भावना उभरती है। जिससे परस्पर प्रसन्नता, सम्मान और अपनापन आता है। अत एव सभी देशों, वर्गों, धर्मों में आपस के अभिवादन के लिए कोई न कोई शब्द और शारीरिक चेष्टा आदि के अनेक रूप प्रचलित हैं। एतदर्थ महर्षि दयानन्द का विचार है कि बड़ों को मान्य दें, उसके सामने उठकर, जाके उच्चासन पर बैठावे प्रथम नमस्ते करें।

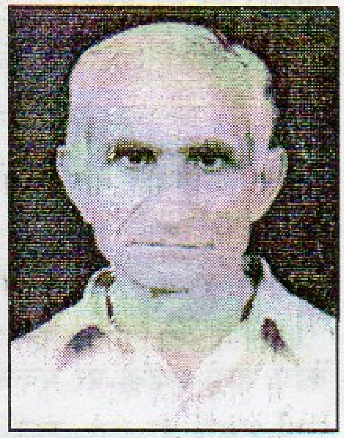

'दिन-रात में जब-जब प्रथम मिलें वा पृथक् हों, तब-तब प्रीतिपूर्वक 'नमस्ते' एक दूसरे से करें।' अभिवादन के नमस्ते शब्द का प्रयोग अवसर के अनुरूप, तर्कसंगत, शास्त्रसम्मत और आधारभूत मूल भावना से हर तरह से मेल खाता है।

ऋषिबोध के सुसंगतपन की तीसरी कसौटी है—सामूहिक नाम—आर्य। व्यवहार में सुविधा की दृष्टि से प्रत्येक का अपना-अपना नाम होता हैं। प्रत्येक का जहाँ अपना-अपना वैयक्तिक नाम होता है, वहाँ सामूहिक दृष्टि से भी प्रत्येक समूह का एक नाम होता हैं। जिस-जिस दृष्टि से कोई समूह होता है, उस-उस के अनुरूप उसका सामूहिक नाम भी होता है। जैसे धर्म, देश, राजनीति की दृष्टि से नाम प्रचलित हैं। ऐसे ही वर्ण=कारोबार=यूनियन के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, फौजी, दुकानदार आदि नाम हैं। इन समूहों की तरह इन समूहों का भी एक सामूहिक नाम होना चाहिए। अत: महर्षि दयानन्द का सिद्धान्त है कि हमारा सामूहिक नाम 'आर्य' है। क्योंकि हमारा जितना भी मान्य साहित्य , उसमें आर्य शब्द का सर्वत्र अत्यधिक प्रयोग मिलता है। यह प्रयोग इतना अधिक प्रभावपूर्ण, सार्वभौमिक, सार्वकालिक तथा सार्वजनिक है कि किसी भी देश का नागरिक जहाँ कहीं, जब कभी इसका प्रयोग करना चाहे, कर सकता है। प्रयोग करने वाले के जीवन की प्रत्येक प्रगति, आकांक्षा और भावना को आर्य शब्द पूरी तरह से अभिव्यक्त करता है, क्योंकि आर्य शब्द का सीधा सा अर्थ है—श्रेष्ठ, अच्छा, भला। अत: नमस्ते की तरह आर्य शब्द से भी स्पष्ट होता है कि महर्षि के मन्तव्य शास्त्रसम्मत तथा तर्कसंगत हैं।

इन सामान्य बातों की तरह जब हम जीवन के मूलभूत तत्त्वबोध के सम्बन्ध में विचार करते हैं, तो पता चलता है कि महर्षि दयानन्द ने जीवन के सर्वांगीण विकास और

निर्वाह के लिए भी सुसंगत तत्त्वबोध दिया है, जो कि एकेश्वरवाद, मनुष्य जाति की एकता, धर्म=अच्छे आचरण का नाम है और सभी महापुरुषों का सम्मान के रूप में है। आइए! इन पर क्रमशः कुछ संक्षिप्त विचार कर लें—

1. एकेश्वरवाद—एकेश्वरवाद का अर्थ है—एक ईश्वर की मान्यता। हमारे चारों ओर पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, सूर्य आदि अनेक प्राकृतिक पदार्थ हैं, जो कि हम जैसे किसी मनुष्य ने नहीं बनाये। इन प्राकृतिक पदार्थों की रचना तथा व्यवस्था बताती है कि इसका कोई न कोई कर्त्ता, धर्त्ता और नियामक है और वही ईश्वर है। ईश्वर के प्राकृतिक कार्य सभी स्थानों पर एकरूप में ही हो रहे हैं। तभी तो सभी स्थानों पर अन्न, फूल, फल, खनिज, धातुएँ एकरूप में ही मिलती हैं। यह एकरूपता एवं समान व्यवस्था, अपने उत्पादक, व्यवस्थापक की एकता को ही सिद्ध करती है।

इसी प्रकार सभी प्राणियों की अपनी-अपनी शरीर रचना, अंग संस्थान और उनका कार्य एक-सा ही है। प्रदेश का सामान्य-सा ही भेद तथा प्रभाव होता है। यह एकरूपता, समानता भी अपने कर्त्ता की एकता को ही सिद्ध करती है। शास्त्रों में एक जगतकर्त्ता, धर्त्ता, संहर्त्ता का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। हाँ, वहां प्रकरण के अनुरूप उसके गुण, कर्म, स्वभाव को बताने के लिए भिन्न-भिन्न नाम का संकेत मिलता है, पर उन नामों का नामी एक ही है। इसके विशेष विवेचन के लिए वेद की कुञ्जी प्रथम समुल्लास पढ़िए।

ईश्वर के एक होने से ही उसके सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान् आदि गुण चरितार्थ होते हैं। ऐसे गुणयुक्त ईश्वर को मानने से ही उसकी कर्मफल व्यवस्था पर विश्वास जमता है। इसी विश्वास पर कोई सदा शुभ कर्मों में जुटा रहता है। भक्ति द्वारा ईश्वर से अपना निकट सम्बन्ध अनुभव करने से ही आत्मिक शक्ति और शान्ति मिलती है।

एकेश्वरवाद की मान्यता के अनुसार महर्षि का यह दृढ़ विश्वास है, जो कि ईश्वर के कार्य जब और कर और कोई अन्य कर नहीं सकता। ईश्वर के उस अनोखेपन को ध्यान में रखते हुए हमें कृतज्ञता के रूप में ईश्वर की ही पूजा, भक्ति, उपासना करनी चाहिए। ईश्वर के स्थान पर अन्य देवी-देवताओं, अवतारों, पैगम्बरों, गुरुओं, माताओं, बाबाओं की उपासना नहीं करनी चाहिए अर्थात् हमारी उपासना और प्रार्थना का एकमात्र आधार, इष्टदेव ईश्वर ही है।

2. मानव जाति की एकता—सभी मनुष्यों के शरीर, अंग संस्थान तथा उनका कार्य एक ढंग का ही है। भौगोलिक दृष्टि से रूप-रंग का बहुत कम ही अन्तर होता है। सभी के हृदयों में सुख-शान्ति, स्नेह की एक-सी ही भावना होती है। सभी के खून का रंग लाल और आत्मा सबकी अजर-अमर ही है। अतः प्रदेश, रंग के भेद के आधार पर परस्पर भेदभाव नहीं करना चाहिए। एक मानव से दूसरे मानव में शिक्षा, योग्यता, सदाचार आदि के कारण ही अच्छे बुरेपन का अन्तर होता है। मानव समाज में स्त्री-पुरुष में भी सामान्य-सा ही भेद होता है, इतने भेद से कोई ऊँचा-नीचा नहीं हो जाता। वस्तुतः ये दोनों समाज के महत्त्वपूर्ण अंग और दोनों का अपना-अपना महत्त्व है। दोनों को समान रूप से एक-दूसरे के सहयोग, समभाव की आवश्यकता होती है। अतः दोनों परस्पर आपूरक हैं और एक के बिना दूसरा अधूरा है।

अतः मानव जाति की एकता, समानता के कारण सबको समान रूप से प्रगति और प्रगतिदायक शिक्षा, धर्म आदि का समान अवसर और अधिकार प्राप्त होना चाहिए। सबको सबसे स्नेह, सौहार्द, सहयोग का व्यवहार मिलना चाहिए। ऐसा वहीं हो सकता है जहाँ सब में समानता की भावना होती है। ऐसा व्यक्ति फिर किसी सामाजिक उच्चता-नीचता और जन्मना स्पृश्यता-अस्पृश्यता का भेदभाव नहीं करता।

जब किसी व्यक्ति का पूर्ण विश्वास होता है कि सारी मानव जाति मानव रूप से एक जैसी ही है, तब वह किसी की केवल किसी विशेष परिवार में जन्म लेने मात्र के कारण या नारी होने से हलका, अछूत नहीं मानता और न ही इस आधार पर किसी से ईर्ष्या-द्वेष करता है। क्योंकि ऐसा करने से परस्पर दूरी बढ़ती है और सामाजिक कार्यों में स्नेह, सद्भाव, सहयोग प्राप्त करने में कठिनाई आती है। इससे परस्पर एकता संगठन भी नहीं पनपता। दूसरी ओर जब कोई किसी को केवल किसी विशेष वर्ग में जन्म लेने के कारण अच्छा मानता है, तो ऐसे विशेष अपने आपको दूसरों से अलग रखने लगते हैं। इससे आपस की एकता

की भी इस पहुँचती है।

3. धर्म=अच्छे आचरण का नाम है—ऋषि के तत्त्वबोध का तीसरा मूल मन्तव्य है—सदाचार, धर्मशब्द वस्तुत: अच्छे आचरा का नाम है और आचरण को अच्छा बनाने के लिए ही धर्म की अपेक्षा होती है। नि:सन्देह शास्त्रों में धर्म शब्द अनेक अर्थों में आता है, पर धर्म का मुख्य अर्थ है—सत्य, ईमानदारी, स्नेह, सहयोग आदि। ये वे गुण हैं, जिनको अपने स्वभाव का अंग बनाने से व्यक्ति, परिवार, समाज सुखी, व्यवस्थित होते हैं। धर्म प्रेरणा द्वारा व्यक्ति के स्वभाव को सुन्दर बनाता है। वह व्यक्ति पर कुछ थोपता नहीं, अपितु स्वभाव का अंग बनाता है।

जैसे कि सामाजिकता के कारण हमारे आपस में माता-पिता, पुत्र, भाई-बहन, मित्र आदि के रूप में सम्बन्ध हैं। आपस के सम्बन्ध के अनुरूप आचरण करने से ही सामाजिक सम्बन्ध जहाँ सुन्दर बनते हैं वहाँ परस्पर स्नेह, सहयोग भी मिलता है। अत एव इस व्यवहार तथा सम्बन्ध के पालन को भी धर्म कहते हैं। कर्मकाड=पूजा-पाठ, जप-तप, स्मरण-ध्यान, तीर्थ-व्रत, धार्मिक निशानियाँ, विश्वास, सिद्धान्त, स्वभाव और आचार आदि धर्म के अनेक अर्थ हैं, पर इन में से '**आचार: परमो धर्म:**' मनुस्मृति 1,108 के अनुसार आचरण ही मुख्य है और तभी तो मनु० 7,92 में धृति, क्षमा, संयम, सत्य आदि आचरण की बातों को धर्म की पहचान बताया गया है। धर्म की ये बातें आचरण में आने पर ही चरितार्थ होती है और धर्म का आचरण पक्ष ही ऐसा है, जिसके सम्बन्ध में सभी धर्म एकमत हैं तथा सभी इनको स्वीकार करते हैं। विस्तार के लिए देखिए—'सरल-सुखी जीवन'।

4. सभी महापुरुषों का सम्मान—संसार में समय-समय पर अनेक विशेष व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंने मानव जाति को सुखी, समृद्ध बनाने के लिए सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनीतिक और भौतिक विज्ञान आदि के क्षेत्रों में विशेष कार्य किया। अपने समय और स्थान पर जिसने जिस भी क्षेत्र में जैसा योगदान दिया, वह अपने योगदान के अनुरूप सभी के सम्मान का पात्र है। क्योंकि उन व्यक्तियों का योगदान ही आज के विकसित रूप को यहाँ तक पहुँचाने में सहयोगी बना है। जैसे कि जार्ज स्टीफैशन तथा जेम्सवाढ द्वारा आविष्कृत इञ्जन आज के विकसित इञ्जनों के विकास में कारण बना।

जिस महापुरुष ने जितने तप तपकर जैसे-कैसे कष्ट सहकर जितनी शिक्षा, योग्यता अर्जित की तथा अपनी अर्जित योग्यता से संयम के साथ मानव जाति के हित के लिए जैसा कार्य किया, वह तदनुरूप सत्कार के योग्य है। वस्तुत: जनता को जितना लाभ हुआ, जहाँ यह बात महत्त्व की है, वहाँ सेवा करने वाले ने जितने संयम से सेवा की, यह एक और विशेष बात है, क्योंकि विकार के अवसर आने पर भी जो अपने आपको भ्रष्ट नहीं होने देते, वे और भी महत्त्वपूर्ण हैं।

हाँ, महापुरुषों द्वारा विविध क्षेत्रों में किए गए महान् कार्यों के प्रति हमें अपनी कृतज्ञता अवश्य प्रकट करनी चाहिए, पर अब क्या अनुकरणीय है और क्या केवल स्मरणीय है ? इसका निर्णय तो आज की विकसित परिस्थिति के अनुरूप ही होना चाहिए, न कि केवल अपनेपन के आधार पर। हाँ, ध्यान रहे, इसीलिए ही महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपनी रचनाओं में श्रीराम, कृष्ण, भोज, शिवा, ईसा, नानक आदि की उस-उस विशेष देन के कारण प्रशंसा की है। बिना किसी यथार्थ आधार के किसी भी महापुरुष की निन्दा करने वालों को ऋषि ने आड़ों हाथों लिया है और इस दृष्टि से भी पुराणों को पसन्द नहीं किया।

इस संक्षिप्त चित्रण से जहाँ यह स्पष्ट होता है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती का तत्त्वबोध सर्वथा शास्त्रसम्मत और तर्कसंगत होने से सुसंगतपथ कहा जा सकता है। '**गहरा पानी पैठ**' वाले पाठक अनुभव करते होंगे कि यहाँ हर बात को ऐसे कहा जाता है कि जैसे किसी को बोलते-बोलते रोक दिया गया हो। ऐसी स्थिति में पाठक की प्रतीक्षा यही रूप धारण करती है, जिसके लिए कहा गया है—

बड़े गौर से पढ़ रहे थे पढ़ने वाले,
पर क्यों रुक गये चलते-चलते॥

ऐसी प्रतीक्षा भरे पाठकों से निवेदन है कि वे '**सुसंगत जीवनपथ**' पढ़ें।

संपर्क-B-2, 92/7B, शालीमार नगर,
जिला होशियारपुर (पंजाब) मो० 9464064398

आर्यों का संघर्ष व बलिदान (3)

❑ राजेश आर्य, गांव आट्टा, जिला पानीपत मो० 9991291318

प्रिय पाठकवृन्द! जो हिन्दू समाज (ब्राह्मण) शास्त्रार्थ में हारकर ऋषि दयानन्द को गाली देने, ईंट-पत्थर मारकर अपमानित करने और विष पिलाकर मारने की नीचता कर सकता है, यदि उसे अवसर मिल जाता, तो वह स्वामी श्रद्धानन्द को भी फांसी दे देता। यह सत्य है कि पण्डित लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, महाशय राजपाल, भक्त फूलसिंह आदि आर्य बलिदानियों की हत्या मुस्लिमों द्वारा की गई थी, हैदराबाद की जेल में सत्याग्रहियों की मृत्यु का कारण मुस्लिम थे। लोहारू में स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी आदि पर लाठियाँ व कुल्हाड़ियाँ चलाने वाले भी मुस्लिम ही थे, पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पण्डित चिरंजीवलाल जैसे बेधड़क प्रचारक को विष हिन्दुओं ने ही पिलाया था (1893 ई०), पंडित तुलसीराम की आँखों में मिर्च मारकर उनके पेट में छुरा मारने वाले हत्यारे अहिंसा के प्रचारक जैनी लोग थे (1903 ई०)। नेपाल की धरती पर आर्यसमाज की स्थापना करने वाले पंडित माधवराव जोशी के परिवार को यातना देने व उनके सुपुत्र पंडित शुक्रराज शास्त्री को फाँसी देने वाले हिन्दू ही थे। स्वयं को धार्मिक दिखाकर अधर्म का आचरण करने वाले पौराणिक पण्डित शास्त्रार्थ में आर्यसमाज से हारकर प्राय: गाली, गलौच व मार-पीट पर उतर आते थे। सामने बैठी जनता समझ जाती थी कि सत्य किधर है। उस काल की एक झलक देखते हैं—

काशी शास्त्रार्थ के समय (1869 ई०) काशी नरेश ईश्वरी नारायण ने पौराणिकों का पक्ष लेकर अपने हारे हुए पण्डितों को विजयी घोषित किया और ऋषि दयानन्द को ईंट-पत्थर मारने वाले धूर्तों को खुली छूट देकर अध्यक्ष पद की गरिमा घटाई थी। कुछ ऐसा ही 1888 ई० (श्रावण शुक्ला 5, 1945 वि०) में बूँदी नरेश ने किया था। नरसिंहगढ़ में पौराणिकों का आर्यसमाज के दो संन्यासियों स्वामी विश्वेश्वरानन्द व स्वामी नित्यानन्द के साथ शास्त्रार्थ हुआ। उसकी अध्यक्षता नरेश ने की थी। बूँदी नरेश रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायी थी। अत: उन्होंने अपनी शासकोचित तटस्थता तथा सम्प्रदाय निरपेक्षता को भुलाकर केवल पौराणिक पण्डितों का ही पक्ष लिया। इतना ही नहीं, अपितु शास्त्रार्थ के तुरन्त पश्चात् दोनों आर्य संन्यासियों को अपने राज्य से भी निर्वासित कर दिया। उस समय के पत्रों में बूँदी नरेश की इस पक्षपातपूर्ण कार्यवाही की कटु आलोचना की गई थी।

धौलपुर रियासत (राजस्थान) में ऋषि दयानन्द के काल में (1880 ई०) ही आर्यसमाज की स्थापना हो गई थी। आर्यसमाज के बढ़ते प्रभाव को सहन न कर रियासत उसके हर कार्य में बाधा उत्पन्न करने लगी। नरेश उदयभानु ने अंग्रेजों व काजी अजीउद्दीन अहमद के साथ मिलकर आर्यसमाज मन्दिर को शौचालय में बदल दिया। स्वामी श्रद्धानन्द ने 1919 ई० में इसके विरुद्ध आन्दोलन किया, तो उन पर पत्थर फैंके गये। देश के आर्यसमाजियों ने हुंकार भरी, तो स्थिति को भांपकर अंग्रेजी सत्ता और नरेश को स्वामी जी व आर्य जनता के सामने झुकते हुए आर्यसमाज के लिए स्थान निर्धारित करने को बाध्य होना पड़ा।

पं० रामसहाय शर्मा (स्वामी अभेदानन्द सरस्वती) बाड़मेर (राजस्थान) के बाजार में आर्यसमाज का प्रचार करते थे, जिस पर स्थानीय सनातन धर्म सभा के प्रधान पंडित बंसीधर ने आपत्ति की। परन्तु पण्डित जी का अपना उपदेश कार्य निर्विघ्न रूप में करते रहें। उसी अवसर पर भारत धर्म महामण्डल के स्वामी हीरानन्द आये। उन्होंने शर्मा जी को मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ के लिए आहूत किया। कबूतरों के चौक नामक स्थान पर शास्त्रार्थ होने लगा, परन्तु जब सनातनी लोगों को अपनी निर्बलता का भान हुआ तो उन्होंने शर्मा जी पर जलता हुआ लक्कड़ फैंक कर मारा। सभा भंग हो गई, परन्तु उपस्थित जनता पौराणिक पक्ष की कमजोरी समझ गई (1922 ई०)।

सन् 1924 ई० में जब पण्डित रामसहाय जी फतहपुर (शेखावटी) में भगवान् श्रीकृष्ण के निष्कलंक चरित्र का निरूपण कर रहे थे तो गैण्डाराम नाम का एक ब्राह्मण बिगड़कर कहने लगा कि श्रीकृष्ण तो स्वयं ब्रह्म थे। उन्हें कोई पाप नहीं लगता। वे स्वयं कहते हैं कि मेरी सोलह

हजार पत्नियाँ हैं। आखिर शास्त्रार्थ की बातचीत हुई और दूसरे दिन जब आर्यसमाज मन्दिर में शास्त्रार्थ होने लगा, तो चार भुजा मन्दिर का पुजारी नंगी तलवार लेकर आर्य विद्वान् पर दौड़ा। तुरन्त सभा भंग हो गई। पुजारी आर्य पण्डित रामसहाय पर ही उसे तलवार से मारने का दोष लगाने लगा। आर्य उपदेशकों को पुलिस पकड़कर ले गई और रातभर हवालात में रखा। दूसरे दिन जब सभी बातों का पता चला तो उन्हें छोड़ दिया गया।

एक बार भिवानी (हरयाणा) में पंडित मनसाराम वैदिक तोप का पौराणिकों से शास्त्रार्थ हुआ। पण्डित जी के साथ उनके मित्र महात्मा हंसराज आर्य भी थे। पौराणिकों ने पण्डित जी को पूरा समय न दिया। पण्डित जी बार-बार शास्त्रार्थ के नियमानुसार अपने समय के पच्चीस मिनट देने के लिए कहते रहे। पौराणिकों ने उत्तर में पण्डित जी पर लाठियों से जानलेवा हमला कर दिया। लाठियों की भीषण वर्षा हुई। मुट्ठी भर आर्यों ने धैर्य, दृढ़ता व साहस के लाठियों के वार सहे। महाशय हंसराज ने पण्डित जी की रक्षा करते हुए स्वयं अपने ऊपर लाठियों के वार सहे। तब जोश में आकर कुछ आर्यवीरों ने पण्डित जी से कहा कि हमें इस दुष्टता का यथायोग्य उत्तर देने दीजिए। पण्डित जी ने कहा—नहीं। मार खाकर भी सत्य के लिए कर्म करो, यही ठीक है।

इस शास्त्रार्थ का ऐसा प्रभाव पड़ा कि भिवानी के पंसारी श्री टेकचन्द जी ने पाषाण-पूजन का परित्याग कर दिया और मूर्तियाँ फैंक कर सच्चे आस्तिक बन गये।

कौल ग्राम (कैथल, हरयाणा) के पौराणिक पण्डित माधवाचार्य बिना बात ही महर्षि दयानन्द को गालियाँ देते रहते थे। पंडित बुद्धदेव मीरपुरी ने उनसे अनेक बार शास्त्रार्थ किये और हर बार उन्हें लज्जित किया। बटाला (गुरदासपुर, पंजाब) में तो माधवाचार्य की पराजय का यह परिणाम निकला कि वहाँ की सनातन धर्म सभा ही टूट गई। मीरपुरीजी माधवाचार्य को ललकारते हुए अफ्रीका के नैरोबी शहर में जा पहुँचे। यहाँ माधवाचार्य के साथ शास्त्रार्थ के प्रसंग में जब मीरपुरी जी ने शिवपुरी की अश्लीलतम गाथा दारुवन की कथा सुनानी प्रारम्भ की तो सनातनी बौखला उठे। एक पुराणपन्थी युवक छुरा लेकर पण्डित मीरपुरी जी पर प्रहार करने के लिए झपटा। मीरपुरी जी तो बच गये, परन्तु आर्यवीर दल के सेनापति को चोट लग गई। सभा में खलबली मच गई। पौराणिकों को सभा भवन से निकालना पड़ा और माधवाचार्य तो थर-थर कांपते हुए हाथ जोड़कर क्षमा-प्रार्थना करने लगे।

ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज को गालियाँ देना ही पण्डित माधवाचार्य का सनातन धर्म का प्रचार था। उसी पुण्य (?) की कमाई से वह रोटी खा रहा था। रोहतक के दुर्गा भवन में भी कभी उसका यह धर्म प्रचार चल रहा था। अपनी आदत के अनुसार वह आर्यों को शास्त्रार्थ की चुनौती दे देता था। (प्रो०) उत्तमचन्द शरर जी ने अपने साथियों से कहा—उसकी सभा में चलकर हम उसको शास्त्रार्थ की चुनौती देंगे। आर्यवीर मामचन्द आदि ने कहा—माधवाचार्य बडा शरारती है। कुछ अनिष्ट हो सकता है। हमें वहाँ नहीं जाना चाहिए। अलग से सभा करनी चाहिए। इस पर शरर जी ने कहा—अरे, आप तो बहुत भीरू हो। आप आर्यवीर कैसे ? इस पर ये लोग वहाँ गये। माधवाचार्य ने पहले की तरह आर्यों को ललकारा, तो शरर जी ने उठकर उससे कुछ प्रश्न कर दिये। तब माधवाचार्य के उकसाने पर पौराणिक शरर जी को अग्निकुण्ड में फैंकने लगे। तब श्री मामचन्द तथा श्री जितेन्द्र जी आर्य (गुरदासपुर, पंजाब) बड़ी वीरता से पौराणिकों की भीड़ को चीरते हुए और पिटाई सहन करते हुए शरर जी को मौत के मुंह में से निकालकर लाये थे (प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु)।

पंडित माधवराव जोशी ने काशी में (1876 ई०) महर्षि दयानन्द से शंका-समाधान कर वैदिक धर्म की दीक्षा ली। पोखरा (नेपाल का गांव) में किसी वैद्य के घर रद्दी कागजों में पड़ी सत्यार्थप्रकाश उठाकर पढ़ी और वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार शुरू कर दिया। वहीं 1896 ई० में नेपाल की पहली आर्यसमाज स्थापित की। अपने पिता के देहान्त (1905 ई०) पर उनका वैदिक रीति से अन्तिम संस्कार किया। उन्होंने नेपाल की प्रथा अनुसार तेरहवीं पर मांसादि की दावत तथा श्राद्ध पर पशुबलि और उसके मांस वितरण से इन्कार कर दिया।

पौराणिक पण्डितों ने राजपुरोहित के यहाँ शिकायत की। धूर्तों ने तत्कालीन सरकार चन्द्रशमशेर राणा की अनुमति

से दरबार में शास्त्रार्थ का आयोजन किया। राणा के बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाने वाले पंजाबी अध्यापक मा० गुरदयाल जी भी जोशी जी के साथ दरबार में गये। जोशी जी निर्भीकता से शास्त्रार्थ करने लगे। प्रसंगवश उन्होंने पशुपतिनाथ की मूर्ति को पत्थर कहा और उसके भोग व मांस आदि के खाने से इंकार किया, तो राजपुरोहित प्रयागराज ने रोनी सूरत बनाकर महाराज ने कहा—हमारे पशुपतिनाथ महादेव को पत्थर बताने वाले को पीटने की अनुमति दीजिए। राजा के 'हाँ' करते ही धूर्तों ने दोनों (जोशी जी व मा० गुरदयाल जी) को लात, घूसों, डण्डों आदि से पीट-पीटकर लहूलुहान कर दिया। पर्वती ब्राह्मणों ने प्रधानमंत्री को धमकी दी कि जोशी जी को जेल में डाला जाए अन्यथा वे (ब्राह्मण) नेपाल छोड़कर चले जायेंगे। जोशी जी को दो वर्ष का सश्रम कारावास तथा बाद में नेपाल छोड़ने का दण्ड दिया गया। (बाद में उनका कुछ पता नहीं चला। शायद वे बीहड़ों में मरवा दिए गए हों)।

अगले दिन जोशी जी के पैरों में मोटी-मोटी बेड़ियाँ डालकर नगर में बुरी तरह घुमाया गया। उनके परिवार को जाति से निकाल दिया। पढ़ने वाले बच्चों के नाम काट दिए गए। परिवार मेहनत मजदूरी करता समय काटता हुआ भारत आ गया। 2 वर्ष की अवधि पूरी होने से पहले ही जोशी जी जेल से भागकर भारत में परिवार से आ मिले। पं० तुलसीराम स्वामी ने उनके पुत्र शुक्रराज (1893 ई० काशी में जन्मे) व पुत्री चन्द्रकान्ता की नि:शुल्क शिक्षा का प्रबन्ध किया। शुक्रराज सिकन्दराबाद गुरुकुल से स्नातक होकर शास्त्री बने और बाद में नेपाल जाकर आर्यसमाज का प्रचार करने लगे।

नेपाल में नए महाराज के रूप में युद्ध शमशेर रकार गद्दी पर थे। पं० शुक्रराज शास्त्री ने नरेश के सामने ही यदुनन्दन मिश्र नामक मैथिली ब्राह्मण से संस्कृत में शास्त्रार्थ किया और उसे परास्त कर दिया। पराजय से क्रोधित हुए ब्राह्मण ने शास्त्री जी को नास्तिक कह दिया। शास्त्री जी ने कहा कि इस पर भी विचार कर लो कि नास्तिक कौन है। यदि मैं नास्तिक सिद्ध हो जाऊँ तो मुझे गोली मार देना और यदि आप हो जायें तो मैं क्या कहूँ। यह सिंहगर्जना सुनकर सभा में सन्नाटा छा गया। शास्त्री जी ससम्मान दरबार से विदा कर दिए गए।

बालविवाह का खण्डन करते हुए स्वयं लिखी पुस्तक 'स्वर्ग का दरबार' और नेपाली भाषा में अनुवाद कर छपवाया (पूर्वार्द्ध) 'ब्रह्मसूत्र शंकर भाष्य' महाराजा को भेंट किया, तो महाराज ने अति प्रसन्न हो शास्त्री जी को 1800 रुपये पुरस्कार स्वरूप दिये। इससे ब्राह्मणों के कलेजे पर सांप लोटने लगा। वे शास्त्रार्थ में तो शास्त्री जी को हरा नहीं सकते थे, अत: उन्होंने महाराजा को इनके विरोध में करने के लिए षड्यन्त्र रचा और महाराज से शिकायत की कि शुक्रराज शास्त्री नेपाल में दयानन्द मत का प्रचार कर अशान्ति फैला रहा है। यह भारत में गांधी-सुभाष से मिलता है। यह कभी भी नेपाल का तख्ता पलट सकता है। यदि समय रहते ने चेता गया और शुक्रराज को उचित सजा न दी गई तो नेपाल राजा को भारी क्षति पहुँच सकती है।

महाराज इन धूर्तों के जाल में फँस गए और शास्त्री जी को राजदरबार में बुलाकर सरकार आदेश के बिना घर से बाहर न निकलने का आदेश दिया। शास्त्री जी की स्वच्छन्द आत्मा नजरबन्दी के इस पिंजरे में छटपटा रही थी, इस अन्याय के विरुद्ध बलिदान देने के लिए तैयार होकर वे नगर के सबसे बड़े चौक इन्द्र चौक में मांसाहार, शराब, बलि, सतीप्रथा, छुआछूत आदि कुप्रथाओं का खण्डन करने लगे। नेपाल की जनता ने उनका सम्मान किया। नेपाल नरेश ने आतंकित होकर उन्हें जेल में डालने का आदेश दिया। जेल में उन्हें भयंकर यातनाएँ दी गईं। घर में पुत्री का जन्म हुआ और ग्यारहवें दिन दोनों माँ-बेटी तड़पकर मर गई, पर अधिकारियों ने शास्त्री जी को मिलने की अनुमति नहीं दी।

शास्त्री जी को उनके साथियों दशरथचन्द्र, धर्मभक्त माथेमा और गंगालाल श्रेष्ठ के साथ मृत्युदण्ड सुनाया गया। माधवराव जोशी ने धर्मवीर पुत्र को जेल जाते देखा, तो ऊँची आवाज में कहा—बेटा! तुमने कोई पाप कर्म किया होता, तो मुझे लज्जा आती। तुम धर्म के लिए बलिदान हो रहे हो। यह मेरे और तुम्हारे लिए गौरव की बात है। हँसते-हँसते बदिान दो। परमेश्वर तुम्हारा कल्याण करे।

9 फरवरी 1941 को आधी रात में जंगल में ले जाकर भूखे ही पंडित शुक्रराज शास्त्री को फाँसी पर लटका दिया

क्रमश: पृष्ठ 16 पर.....

सभी दु:खों से मुक्ति व आनन्दमय मोक्ष की प्राप्ति के चार साधन

❑ मनमोहन कुमार आर्य, 196 चुक्खूवाला-2, देहरादून-248001, मो० 9412985121

मनुष्य को अपने पूर्वजन्म के शुभकर्मों के परिणाम स्वरूप परमात्मा से यह श्रेष्ठ मानव शरीर मिला है। सब प्राणियों से मनुष्य का शरीर श्रेष्ठ होने पर भी यह प्राय: सारा जीवन दु:ख व क्लेशों से घिरा रहता है। दूसरों लोगों को देखकर यह अपनी रुचि व सामर्थ्यानुसार विद्या प्राप्त कर धनोपार्जन एवं सुख-सुविधा की वस्तुओं का संग्रह व उनके भोग को ही सुख व परम-लक्ष्य मान लेता है। इसे यह पता नहीं होता कि यह सारी वस्तुयें जिन्हें हम अपने सुख के लिये प्राप्त करते हैं, उनमें दु:ख भी मिला रहता है। दु:खों से निवृत्ति का उपाय आध्यात्मिक ज्ञान व उसके अनुरूप कर्म करना है। ज्ञान दो प्रकार का है जिसे आध्यात्मिक एवं सांसारिक ज्ञान कह सकते हैं। आध्यात्मिक ज्ञान से युक्त होने पर धन व भौतिक पदार्थों की अल्प मात्रा में उपलब्धता होने पर भी हम सुखी रह सकते हैं। दूसरी ओर सांसारिक ज्ञान हमें सुखों के भोग के प्रति अतृप्त बना देता है। हम आज के संसार में देखते हैं कि मनुष्य बिजीनेस आदि व्यवसायिक अनेक कार्यों को करके रात-दिन धनोपार्जन करने में व्यस्त रहते हैं। उनके पास अपने को स्वस्थ रखने के लिये भी समय नहीं होता। सोकर उठते ही वह अपने कुछ अत्यावश्यक दैनन्दिन कार्य करते हैं और धनोपार्जन के कार्यों में लग जाते हैं। रात्रि शयन से पूर्व तक भोजन आदि के लिये कुछ समय निकालकर वह सारा समय धन कमाने व सुख-सुविधा की वस्तुयें एकत्रित कर मनोरंजन आदि करने में लगाते हैं। ऐसा करते हुए ही उसकी आयु व्यतीत होती जाती है और मृत्यु आ जाती है। क्या इसी का नाम मनुष्य जीवन है? ऐसा कदापि नहीं हो सकता। हमें अपने शास्त्रों को पढ़कर अपने विवेक से आत्मा व मनुष्य जीवन के उद्देश्य को जानना चाहिये और अक्षय सुख मोक्ष के आनन्द की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिये।

मनुष्य केवल भौतिक जड़ पदार्थों से बना हुआ शरीर ही नहीं है अपितु इस शरीर में एक दिव्य, अनादि, नित्य, अमर, सूक्ष्म व एकदेशी चेतन जीवात्मा है। मनुष्य जीवन को मोक्ष का द्वार कहा जाता है और वस्तुत: यह बात ठीक भी है। मोक्ष का अर्थ दु:खों से पूर्ण निवृत्ति होना माना जाता है। मोक्ष की परिभाषा यह है कि दु:खों से पूरी तरह से छूट जाना मोक्ष है। मोक्ष की चर्चा होती है तो हमें अपने जीवन के दु:खों पर भी ध्यान देना होगा। आत्मा को जिन कार्यों से वर्तमान या भविष्य में शारीरिक व आत्मिक पीड़ा, कष्ट व अप्रिय अनुभूतियां होती हैं, उसे दु:ख कह सकते हैं। शरीर में ज्वर व उदरशूल आदि अनेक रोगों से भी मनुष्य को दु:ख प्राप्त होता है। संसार में परमात्मा ने अनेक प्रकार के प्राणियों को बनाया है। इनसे भी हमें अनेक बार दु:ख मिलने की सम्भावना होती है। संसार के सबसे महान् व्याकरणाचार्य ऋषि पाणिनि के बारे में कहा जाता है कि एक शेर ने उन्हें खा लिया था, जिससे उनकी मृत्यु हुई थी। ऐसी घटनायें मृतक व उनके सम्बन्धियों को दु:ख देती हैं। तीसरे प्रकार के दु:ख वह होते हैं जो प्राकृतिक आपदा यथा बाढ़, अतिवृष्टि, सूखा, भूकम्प आदि कारणों से होते हैं। मनुष्य जीवन भर इन्हीं दु:खों में फंसा रहता है। आजकल प्रदूषण व मिलावट से भी अनेक प्रकार के रोग आदि हो रहे हैं। वायु, जल, अन्न, वनस्पतियां एवं ओषधियां सभी प्रदूषित हैं। मनुष्य की आयु, जो वैदिक काल में 100 से 300 वा 400 वर्ष तक की होती थी, आजकल प्राय: 55 से 80 वर्ष के बीच ही समाप्त हो जाती है। अत: मनुष्यों को किसी प्रकार का वैसा भी दु:ख आने से पूर्व उसके विषय में चिन्तन करके उसके निवारण के लिये प्रयास करना चाहिये। वैदिक शास्त्रों में बार-बार के जन्म-मरण तथा सभी दु:खों से मुक्ति के लिये ही पंचमहायज्ञों, स्वाध्याय, आसन, प्राणायाम, ध्यान, योग, सन्ध्या, यज्ञ व सदाचरण आदि का विधान किया गया है।

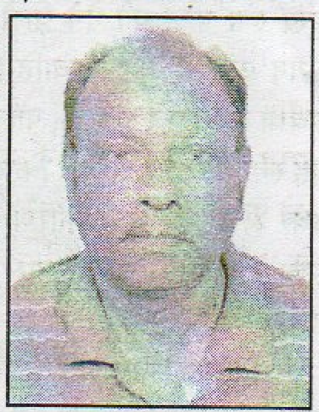

मोक्ष वा दु:खों की स्थायी निवृत्ति के लिये मनुष्यों को किन साधनों को अपने जीवन में करना चाहिये, इसका उल्लेख ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के नवम समुल्लास में किया है। वह अपने ग्रन्थ में चार प्रकार के

साधनों का उल्लेख करते हैं। इन चार साधनों के नाम विवेक, वैराग्य, षट्क सम्पत्ति तथा मुमुक्षत्व हैं। मुक्ति वा मोक्ष चाहने वालों को मिथ्याभाषणादि पाप कर्मों को छोड़कर सुख रूप फल को देने वाले सत्यभाषणादि धर्माचरण का सेवन अवश्य करना चाहिये। मनुष्य को अधर्म का भी सर्वथा त्याग कर धर्म का पालन करना चाहिये। हमें हर क्षण यह स्मरण रखना चाहिये कि दुःख का मूल कारण पापाचरण तथा सुख का मूल कारण धर्माचरण है। मोक्ष के चार साधनों का हम क्रमानुसार सत्यार्थप्रकाश के आधार पर उल्लेख कर रहे हैं।

मनुष्य को सत्पुरुषों के संग से विवेक अर्थात् सत्यासत्य, धर्माधर्म, कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय अवश्य करना चाहिये। इन्हें पृथक्-पृथक् यथार्थ रूप में जानना चाहिये। मानव शरीर अर्थात् इसके पंचकोषों का हमें विवेचन करना चाहिये। प्रथम 'अन्नमय कोश' जो त्वचा से लेकर अस्थिपर्यन्त का समुदाय पृथिवीमय है। दूसरा 'प्राणमय कोश' जिसमें 'प्राण' अर्थात् जो भीतर से बाहर आता, 'अपान' जो बाहर से भीतर जाता, 'समान' जो नाभिस्थ होकर सर्वत्र शरीर में रस पहुंचाता, जिससे सब शरीर में चेष्टा आदि कर्म जीव करता है। तीसरा 'मनोमय कोश' जिस में मन के साथ अहंकार, वाक्, पाद, पाणि, पायु और उपस्थ पांच कर्म-इन्द्रियां हैं। चैथा 'विज्ञानमय कोश' जिस में बुद्धि, चित्त, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका ये पांच ज्ञान-इन्द्रियां जिनसे जीव ज्ञानादि व्यवहार करता है। पांचवां 'आनन्दमय कोश' जिसमें प्रीति प्रसन्नता, न्यून आनन्द, अधिकानन्द, आनन्द और आधार कारणरूप-प्रकृति है। ये पांच कोष कहलाते हैं। इन्हीं से जीव सब प्रकार के कर्म, उपासना और ज्ञानादि व्यवहारों को करता है।

आत्मा और शरीर की तीन अवस्थायें होती हैं। एक 'जागृत', दूसरी 'स्वप्न' और तीसरी 'सुषुप्ति' अवस्था। तीन शरीर हैं—एक 'स्थूल' जो यह दीखता है। दूसरा पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच सूक्ष्म भूत, मन तथा बुद्धि, इन सतरह तत्त्वों का समुदाय 'सूक्ष्म शरीर' कहाता है। यह सूक्ष्म शरीर जन्म-मरणादि में भी जीव के साथ रहता है। इस के दो भेद हैं—एक भौतिक अर्थात् जो सूक्ष्म भूतों के अंशों से बना है। दूसरा—स्वाभाविक जो जीव के स्वाभाविक गुण रूप है। यह दूसरा अभौतिक शरीर मुक्ति में भी रहता है। (यह अभौतिक शरीर जीवात्मा व इसके स्वाभाविक गुणों को कहा गया है जो सृष्टि बनने से पूर्व व प्रलय के बाद भी आत्मा के साथ रहते हैं।) इसी से जीव मुक्ति में सुख को भोगता है। तीसरा कारण शरीर जिस में सुषुप्ति अर्थात् गाढ़ निन्द्रा होती है। वह प्रकृति रूप होने से सर्वत्र विभु और सब जीवों के लिए एक है। चैथा तुरीय शरीर वह कहाता है जिस में समाधि से शरीर का पराक्रम मुक्ति में भी यथावत् सहायक रहता है।

इन सब पांच कोशों तथा तीन अवस्थाओं से जीव पृथक् है। जब मृत्यु होता है तब सब कोई कहते हैं कि जीव निकल गया। यहीं जीव सब का प्रेरक, सब का धर्त्ता, साक्षीकर्त्ता तथा भोक्ता कहाता है। जो कोई ऐसा कहता है कि जीव कर्त्ता व भोक्ता नहीं है तो जानो वह व्यक्ति अज्ञानी व अविवेकी है क्योंकि बिना जीव के, जो ये सब ज? पदार्थ हैं, इन को सुख-दुःख का भोग वा पाप-पुण्य कर्तृव्य कभी नहीं हो सकता। हां, इन के सम्बन्ध से जीव पाप-पुण्यों का कर्त्ता और सुख-दुःखों का भोक्ता है। जब इन्द्रियां अपने-अपने विषयों में, मन इन्द्रियों के साथ और आत्मा मन के साथ युक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे वा बुरे कर्मों में लगाता है तभी वह बहिर्मुख हो जाता है। उसी समय अच्छे कर्मों को करने में भीतर से आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मों को करने में भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होती है। यह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा मनुष्य की जीवात्मा में होती है। जो कोई इस शिक्षा के अनुकूल वर्त्तता है वही मुक्तिजन्य सुखों को प्राप्त होता है और जो विपरीत वर्त्तता है वह बन्धजन्य दुःख भोगता है।

मोक्ष प्राप्ति का दूसरा साधन वैराग्य है। विवेक से जो सत्यासत्य को जाना हो, उसमें से सत्याचरण का ग्रहण और असत्याचरण का त्याग करना विवेक है। जो पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभाव को जानकर उस की आज्ञा पालन और उपासना में तत्पर होना है, उस से विरुद्ध न चलना तथा सृष्टि से उपकार लेना वैराग्य कहलता है।

इसके पश्चात तीसरा साधन—'षट्क सम्पत्ति' अर्थात् 6 प्रकार के कर्म करना—एक 'शम' जिस से अपने आत्मा और अन्तःकरण को अधर्माचरण से हटाकर धर्माचरण में

क्रमशः पृष्ठ 16 पर......

ब्रह्मचर्य का वह सन्देश

❑ प्राचार्य अभय आर्य, रोहतक

सभी सद्गुणों का मूल ब्रह्मचर्य है। वेद, उपनिषद्, नीतिग्रन्थ, आयुर्वेद इसकी महिमा का वर्णन करते हैं। आज से 20-30 वर्ष पहले तक आर्य विद्वानों, साधुओं से 'ब्रह्मचर्य तपस्या से देवताओं ने मृत्यु को जीत लिया', 'ब्रह्मचर्य से बल, आयु की प्राप्ति होती है', 'मोक्ष की इच्छा के लिए ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है', 'चरित्रवान् का सब सम्मान करते हैं', ऐसे विषयों पर प्रेरक भाषण सुनते थे, उनके लेख व साहित्य पढ़ते थे। उसके बाद धीरे-धीरे यह परम्परा बंद हुई। सब या तो व्यवस्थापक बनने की होड़ में लग गए या स्वयं के आश्रमों या बने-बनाये मंचों पर भाषण तक सिमट गए। स्वामी स्वतन्त्रानन्द, स्वामी ओमानन्द, आचार्य बलदेव जी जैसे आप लोगों के मध्य घूमने वाले, अपने व्यक्तित्व, कर्तृत्व से उन्हें प्रभावित करने वाले साधुओं के अभाव में समाज में चरित्र की गिरावट का जो भयावह रूप है, वह सबके सामने है। इसकी भयावह स्थिति का सबसे बड़ा उदाहरण है कि युवा बालक कानों में 'लीड' लगाकर गाने सुनते हुए दौड़ लगाते हैं, बड़े भी गाने सुनते हुए भ्रमण करते हैं।

शब्द, स्पर्श आदि के जाल में फँसने का व उसके भयंकर परिणाम का नीतिकार का वह सन्देश या तो अब सुनाई ही नहीं देता या ऐसे प्रचारक से सुनाई देता है जो उस सन्दर्भ में उतना योग्य नहीं है। स्वामी स्वतन्त्रानन्द कहते थे कि हंसी, वीरता की बातें सुनाकर श्रोताओं को बांधे रखना अलग बात है लेकिन सिद्धान्त को उनके हृदय में उतारना अलग बात है। वे उपदेशकों को व्यावसायिक व मिशनरी श्रेणियों में बांटते थे। व्यावसायिक का भी महत्त्व स्वीकार करते थे लेकिन मिशनरी की नितान्त आवश्यकता मानते थे। वे इस बात पर खेद प्रकट करते थे कि साधु-संन्यासी भी व्यवस्थापक बनना चाहते हैं, प्रचारक कोई नहीं बनना चाहता?

स्वामी स्वतन्त्रानन्द, आचार्य बलदेव का व्यक्तित्व ही ब्रह्मचर्य का सन्देश देता था। उनका तप दर्शनीय था। स्वामी ओमानन्द का व्यक्तित्व भी और ब्रह्मचर्य पर उनका कर्तृत्व दोनों को लांघा नहीं जा सकता। उनकी लिखी पुस्तक 'ब्रह्मचर्यामृत' अब भी इस अमूल्य सन्देश के प्रचार का सर्वोत्कृष्ट साधन बनी हुई है। 'ब्रह्मचर्य के साधन' के तो कहने ही क्या?

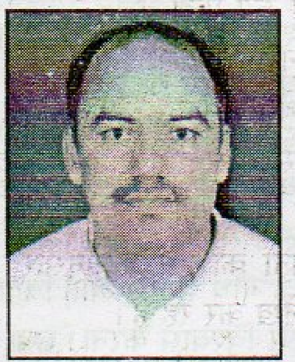

ब्रह्मचर्य की तपोमूर्ति के रूप में आचार्य बलदेव जी स्वामी व्रतानन्द (गुरुकुल चित्तौड़गढ़) को विशेष याद करते थे। वे कहते थे कि स्वामी जी इस नियम पालन में विशेष सचेत थे। स्वामी ओमानन्द जी उनके इस दोहे को बड़ा याद करते थे—

विषय का विषधर जब उसे ओ३म् जड़ी को ले बा।
है नागदमन यह औषधी ढूंढ़न दूर न जा॥

विषय-वासना, स्वार्थ, विकार, कुटिलता, अराजकता, दु:ख, दरिद्रता, ईर्ष्या-द्वेष, लोभ-लालच-मूढ़ता से झुलसते-जलते-तपते इस युग में 'ब्रह्मचर्य' सन्देश की नितान्त आवश्यकता है, लेकिन जिस प्रकार बालक अपने अध्यापक की ही मानता है, उसी प्रकार आम युवा भी इस संदर्भ में उसी की मानेगा जो इस विषय का योग्य अध्यापक होगा। अध्यापक ऐसा कि यहाँ हमने निम्न साधुओं का वर्णन किया जिसमें ऐसे साधुओं के गुण-कर्म-स्वभाव होंगे। वरन् कुछ खास नहीं होगा। गंगाप्रसाद उपाध्याय जी जैसे दिग्गज विद्वानों ने कहा था कि बड़े-बड़े कार्यक्रमों में धन-बल अधिक लगता है निकलता कुछ नहीं।

हे दयालु! हमारे आर्यसमाज में मिशनरी, तपस्वी, साधु, प्रचारक प्रकाशित कर दे। दयालु दया कर! तेरी सत्य विद्या का प्रचार करने वाले एक बलिदानी ऋषि का बनाया यह संगठन है। कृपानिधान, कृपा कर, सहाय दे।

आवश्यक सूचना

'आर्य प्रतिनिधि' पाक्षिक के सभी ग्राहकों को सूचित किया जाता है कि जिन ग्राहकों का जो भी बकाया शुल्क बनता है, वह बकाया शुल्क सभा कार्यालय में जमा करें या मनीऑर्डर द्वारा भेजने का कष्ट करें ताकि हम आपकी पत्रिका समय पर भेजते रहें। शुल्क भेजते समय आप ग्राहक संख्या व मोबाइल नंबर अवश्य लिखें।

—रघुवरदत्त, पत्रिका लिपिक, मो० 7206865945

सभी दुःखों से मुक्ति व... पृष्ठ 14 का शेष...

प्रवृत्त रखना। दूसरा 'दम' जिस से श्रोत्रादि इन्द्रियों और शरीर को व्यभिचारादि बुरे कर्मों से हटाकर जितेन्द्रियत्वादि शुभ कर्मों में प्रवृत्त रखना। तीसरा 'उपरति' जिस से दुष्ट कर्म करने वाले पुरुषों से सदा दूर रहना। चौथा 'तितिक्षा', इसका अर्थ है कि चाहे निन्दा, स्तुति, हानि, लाभ कितना ही क्यों न हो, परन्तु हर्ष शोक को छोड़ मुक्ति साधनों में सदा लगे रहना। पांचवां 'श्रद्धा' जो वेदादि सत्य शास्त्र और इन के बोध से पूर्ण आप्त विद्वान् सत्योपदेष्टा महाशयों के वचनों पर विश्वास करना। छठा 'समाधान' चित्त की एकाग्रता ये छः मिलकर तीसरा साधन 'षट्क सम्पत्ति' कहाता है। चैथा साधन 'मुमुक्षत्व' है। जैसे तृषातुर को सिवाय अन्न व जल के दूसरा कुछ भी पदार्थ अच्छा नहीं लगता वैसे विना मुक्ति के किसी दूसरे साधन से प्रीति न होना। इन साधनों के बाद ऋषि दयानन्द जी ने चार अनुबन्धों की भी चर्चा की है। इसके लिये पाठक सत्यार्थप्रकाश का पूरा नवम समुल्लास ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे तो उन्हें इसका पूरा ज्ञान व लाभ प्राप्त हो सकेगा।

मनुष्य का जन्म ज्ञान प्राप्ति, सदाचरण तथा मुक्ति के उपायों व साधनों को करने के लिये ही हुआ है। वह लोग धन्य हैं जो वेद, वैदिक साहित्य तथा सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों को पढ़कर अपने जीवन को मोक्षगामी बनाते हैं। मिथ्याचरण का त्याग किये बिना तथा सत्याचरण और मोक्ष के साधनों को अपनायें हम दुःखों से पूरी तरह से निवृत्त नहीं हो सकते। हमने इस लेख में मोक्ष की चर्चा की है। यह ज्ञान किसी मत, मजहब, पन्थ व समुदाय के पास नहीं है। जब ज्ञान ही नहीं तो वह मोक्ष को प्राप्त भी नहीं हो सकते। जिस प्रकार अन्न, जल, वायु, सुभाषित और स्वर्ण के गुणों को न जानने वाला मनुष्य इन पदार्थों से लाभान्वित नहीं हो सकता, उसी प्रकार मोक्ष को न जानने वाला मनुष्य व धर्माचार्य भी मोक्ष के अनुरूप आचरण न करने से इसे प्राप्त नहीं कर सकता। मोक्ष प्राप्ति के इच्छुक मनुष्यों को ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र भी पढ़ना चाहिये। एक मुमुक्षु व योगी का जीवन कैसा होना चाहिये, इसे ऋषि दयानन्द के जीवन के अध्ययन से जाना जा सकता है। इसी के साथ इस चर्चा को विराम देते हैं।

आर्यों का संघर्ष व..... पृष्ठ 12 का शेष.....

गया। जब उन्हें फाँसी पर लटकाया जा रहा था, तो उन्होंने कहा—रस्सा तो मैं स्वयं ही बांध लूँगा। किन्तु तुम निरपराध का वध कर रहे हो। इस फल तुम्हें अवश्य भोगना पड़ेगा। तुम्हारा समस्त कुल नाश को प्राप्त होगा। शास्त्री जी के बाद गंगालाल जी को पेड़ से बांधकर गोली मार दी गई व अन्यों को फांसी पर लटका दिया गया।

2 जून 2001 को संसार में यह समाचार फैल गया कि बीती रात भोजन के समय नेपाल संवैधानिक अध्यक्ष 56 वर्षीय वीरेन्द्र विक्रम शाहदेव की हत्या कर दी गई तथा गोलियों की बौछार में महारानी ऐश्वर्य राजलक्ष्मी, देवी शाह उनके छोटे बेटे राजकुमार निराजन, बेटी श्रुति राणा, महाराजा की बड़ी बहन राजकुमारी शारदाशाह, शारदा के पति कुमार खड्ग विक्रमशाह और महाराजा की चचेरी बहन राजकुमारी जयन्ती शाह इस हादसे में मारे गये, यानि महाराजा के समस्त कुल का नाश हो गया।

इतिहासविद् इस घटना को 60 वर्ष पूर्व हुई उस घटना से जोड़ते हैं। हो सकता है कुछ तर्कशील लोग इससे सहमत न हों, पर यह तो सत्य है कि यदि सच्चे (परोपकारी) ब्राह्मण की आवाज दबाई जाएगी तो हत्या की जाती हुई ब्राह्मण की वाणी राजा का विनाश कर देती है। वैदिक विद्वान् पंडित अभय विद्यालंकार ने ब्रह्मगवी सूक्त के मन्त्रों की व्याख्या करते हुए सार रूप में लिखा है—हे राजा! तू ब्राह्मण की गौ (वाणी) को मत अदन कर, मत नाश कर। ब्राह्मण की हिंसा मत कर। इसका बड़ा घोर दुष्परिणाम होगा। मारी जाती हुई 'ब्राह्मण की गौ' राष्ट्र को मार डालती है। वैसे भी कर्मफल की वैदिक व्यवस्था तो है ही। जो जैसा बोयेगा, उसे वैसा ही काटना पड़ेगा।

यदि पुराणों व पौराणिक रूढ़ियों का खण्डन करना ही हिन्दुओं (पण्डितों) द्वारा ऋषि दयानन्द के विरोध का कारण था, तो वैदिक कर्मकाण्ड का विरोध करने वाले बुद्ध-महावीर, बौद्धों व जैनियों का खण्डन करने वाले रामानुजाचार्य आदि पूज्य कैसे हो गये? और स्वयं मांस खाने के लिए वैदिक ऋषियों को गोहत्यारा बताने वाले, राम-कृष्ण को काल्पनिक कहने वाले, समाज-सुधार के विरोधी, ईसा व मोहम्मद का गुणगान करने वाले स्वामी विवेकानन्द हिन्दुओं के पूज्य कैसे हो गये? क्रमशः....

यज्ञ हेतु दान देकर पुण्य के भागी बनें

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा में प्रतिदिन दोनों समय यज्ञ किया जाता है और पर्यावरण शुद्धि के लिए रोहतक जिले के सरकारी, गैर सरकारी विद्यालयों और गांव-गांव में यज्ञ व वेद प्रचार का आयोजन किया जाता है। इस महायज्ञ में आप लोग अपने बच्चों के जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ व अन्य उपलक्ष्यों पर दान देकर पुण्य के भागी बनें। संस्था सदैव आपकी आभारी रहेगी।

यज्ञदान हेतु बैंक खाता

ACCOUNT NAME - ARYA PRATINIDHI SABHA HARYANA
BANK NAME - PNB JHAJJAR ROAD ROHTAK
Account No. - 0406000100426205
IFSC - PUNB0040600
MICR - 124024002

प्रेषक :
मन्त्री
आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा
दयानन्द मठ, रोहतक
हरियाणा, 124001

श्री ....

पता ....

....

आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा (रजि.) के स्वामित्व में मुद्रक, प्रकाशक उमेद शर्मा ने दुर्गेश्वरी प्रिंटर्स के लिए आचार्य प्रिंटिंग प्रेस, रोहतक से मुद्रित एवं कार्यालय, सिद्धान्ती भवन, दयानन्दमठ रोहतक-124001 से प्रकाशित।

- सम्पादक उमेद शर्मा